International Journal of HumanitiesAnd Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 20-09-2022; Accepted: 05-10-2022; Published: 22-10-2022
Volume 8, Issue 5, 2022, Page No. 71-73

आनुभविक ज्ञान का प्रमाणीकरणः ह्यूम को प्रतिउत्तर

देवेश कुमार पाण्डेय
शोध–छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में ज्ञान सम्बन्धी दो मत मिलते हैं, प्राग्नुभविक और आनुभविक। प्रस्तुत शोध–पत्र आनुभविक ज्ञान के स्वरुप और प्रमाणीकरण से सम्बंधित है। जिसका विषय है, प्रथम, ह्यूम का आनुभविक ज्ञान की संरचना और प्रमाणीकरण के सम्बन्ध में क्या विचार है? द्वितीय, क्या ह्यूम के द्वारा अनुभाविक ज्ञान के सन्दर्भ में जो कुछ कहा गया है उसका कोई प्रतिउत्तर दिया जा सकता है? ऐसा अध्ययन इस शोध–पत्र में किया गया है।

मूल शब्दः ज्ञान, प्रमाणीकरण, ह्यूम

आनुभविक ज्ञान क्या है?

किसी वस्तु के बारे में हम कैसे जानते हैं और उसके प्रमाणीकरण का आधार क्या है? यह एक ज्ञानमीमांसीय प्रश्न है। आनुभविक ज्ञान को ज्ञान का आधार मानकर चलने वाले दार्शनिकों के सामने यह बड़ी चुनौती है। आनुभविक ज्ञान संवेदनों के माध्यम से प्राप्त एक प्रकार का इन्द्रियानुभव है।[1] मार्शल स्वेन के अनुसार[2] 'अनुभववाद के स्तम्भ के रूप में एक स्थापना यह भी है, जगत के ज्ञान के सम्बन्ध में हमारा प्राथमिक स्त्रोत अनुभव है। अर्थात संक्षेप में, बाह्य जगत के बारे में हमारे ज्ञान का मतलब है कि उनके बारे में हमारे विश्वास के प्रमाणीकरण का आधार अनुभव द्वारा प्राप्त सत्य प्रमाण से है। इस तरह से प्राप्त ज्ञान आनुभविक ज्ञान है'। पाश्चात्य दर्शन जगत में किसी वस्तु के ज्ञान के सम्बन्ध में दो तरह के मत को माना जाता है[3]– प्रागनुभविक और आनुभविक ज्ञान। प्रागनुभविक ज्ञान में अनुभव से पूर्व बाह्य जगत के ज्ञान की सम्भावना को माना जाता रहा है और ऐसे ज्ञान को अनिवार्य और सार्वभौमिक सत्य कहा जाता है।[4] इसका स्त्रोत बुद्धि को माना गया है । आनुभविक ज्ञान के अन्तर्गत हम इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को रखते हैं। जो आपातिक और विशिष्ट सत्य होते हैं।[5] अनुभववादियों ने आनुभविक ज्ञान की सम्भावना का आधार इन्द्रिय–अनुभव को माना है। जन्म के समय हमारी बुद्धि एक कोरे–कागज के समान होती है जिसमें ज्ञान अनुभव के माध्यम से आता है।[6] जीवन की सामान्य घटनाओं के आनुभविक ज्ञान की प्रक्रिया में विशिष्ट उदाहरणों के निरिक्षण के आधार पर सामान्य निष्कर्ष की स्थापना की जाती है। जिसका आधार इन्द्रिय–अनुभव को माना जाता है।

आनुभविक ज्ञान का प्रमाणीकरण और ह्यूम

शताब्दियों से, दर्शनशास्त्री ज्ञान के मानदंड के विषय में वाद–विवाद करते रहें हैं। हमारे विश्वास प्रमाणित कब हैं? इस सम्बन्ध में डेविड ह्यूम (1724–1804) ने प्रकृति में कारण और कार्य सम्बन्धों के प्रमाणीकरण पर प्रश्न उठाकर विज्ञान को उलट दिया। समस्त ज्ञान का आधार इन्द्रियानुभव को मान लेने पर ज्ञान के सार्वभौमिक और वस्तुनिष्ठ मापदंडों के प्रमाणीकरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ह्यूम के अनुसार, 'ज्ञान के दो स्त्रोत हैंः प्रत्ययों का सम्बन्ध, जिसे आकारिक ज्ञान भी कहा जा सकता है और तथ्यों के मामले से सम्बंधित ज्ञान'। आकारिक ज्ञान एक तरह से विश्लेषणात्मक होते हैं जिसका प्रमाणीकरण प्राग्नुभविक रूप में किया जाता रहा है और जो अनुभव से स्वतंत्र और अनिवार्य हैं। इनके सम्बन्ध में प्राग्नुभविक प्रमाणीकरण से इनकार करना विराधाभासी होगा, जैसे बीजगणित और ज्यामिति के विषय। तथ्यात्मक ज्ञान जागतिक अनुभव पर आधारित आनुभविक ज्ञान है, जो वस्तु और उनके कारणात्मक सम्बन्धों से सम्बन्धित है। प्राग्नुभविक ज्ञान की तरह आनुभविक ज्ञान का निषेध व्याघाती नहीं होता है। ऐसा ज्ञान केवल संभाव्य हो सकता है अनिवार्य और निश्चित नहीं। ह्यूम के अनुसार कारणता का सम्बन्ध भी हमारे प्रत्ययों के आनन्तर्य और मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध है। वास्तव में ह्यूम की योजना आनुभविक ज्ञान से सम्बन्धित एक सामान्य गलत धारणा को स्पष्ट करने की थी। वह धारणा अनुभव के आधार पर अनुमानों के तार्किक प्रमाणीकरण की थी जैसे कारण–कार्य की अनिवार्यता और प्रकृति की एकरूपता।

ह्यूम के अनुसार, तथ्यात्मक ज्ञान संस्कारों से प्रारम्भ होता है, जिसका सम्भावित स्त्रोतः इन्द्रियानुभव, भाव, इच्छा अथवा दृढ़संकल्प का कार्य है। यहां पर इन्द्रियानुभव पर विचार करना जरुरी है क्योंकि आनुभविक ज्ञान की संरचना और प्रमाणीकरण में इनकी अहम् भूमिका है। इन्द्रियानुभव से प्राप्त संस्कारों की प्रतिलिपि स्मृति में संग्रहित हो जाती है जो कल्पना में प्रत्याशित होता है। इन संस्कारों की प्रतिलिपि को ही ह्यूम विचार या प्रत्यय कहते हैं। लोगों की कल्पना का आधार ये प्रत्यय हैं, जो साहचर्य के तीन सिद्धांतों पर आधारित हैं यथा प्राकृतिक समरूपता या सदृश्यता, दैशिक–कालिक सम्बन्ध और कारण एवं कार्य। लेकिन ये सहचर्य केवल कल्पना मात्र हैं इनका कोई संस्कार नहीं मिलता है। ह्यूम के अनुसार इन तीन नियमों के आधार पर हम एक ऐसा निष्कर्ष निगमित करते हैं जो निश्चित, अनिवार्य और सार्वभौम होने का दावा करते है। प्रकृति की समरूपता का अर्थ है, 'प्रकृति समान परिस्थितियों में समान कार्य करती है'।[7] ऐसा अतीत में सदैव होता रहा है, इसलिए भविष्य में भी ऐसा होगा। समीपता एक दैशिक और अनुक्रम एक कालिक सम्बन्ध है। दो वस्तुएं या दो घटनाएं एक दूसरे से कारणात्मक सम्बन्ध परस्पर समीपता और अनुक्रम के कारण रखती हैं, ऐसी मान्यता है। लेकिन ह्यूम प्राकृतिक समरूपता और समीपता एवं अनुक्रम के आधार पर सार्वभौम और अनिवार्य आनुभविक ज्ञान की सम्भावना का खण्डन करते हैं।[8] साथ–साथ इन सम्बन्धों पर आधारित कारणता के प्रत्यय को अनिवार्य सम्बन्ध न मानकर एक आनुभविक सम्बन्ध मानते हैं। उनके अनुसार कारण–कार्य सम्बन्ध प्रत्ययों के बीच कोई तार्किक सम्बन्ध न होकर एक मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध है। ह्यूम के दर्शन में कारण–कार्य सम्बन्ध की अनिवार्यता और सार्वभौमिकता को स्वीकार नहीं किया गया है। स्मृति के आधार पर भी हम निश्चित और अनिवार्य ज्ञान नहीं प्राप्त कर

सकते क्योंकि स्मृति के स्तर पर कभी–कभी भ्रमों और विभ्रमों का भी ज्ञान होता है। इन्द्रियानुभव के आधार पर हम केवल विशेषों का ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। और यदि हम कुछ विशिष्ट तथ्यों के आधार पर कोई सामान्य ज्ञान निगमित करते हैं तो ऐसा करने पर अविचारित सामान्यीकरण दोष होगा।

इसके अतिरिक्त ह्यूम कारण–कार्य सम्बन्ध को प्रकृति की समरूपता पर आधारित मानते हैं और प्रकृति की समरूपता का आधार एक तरह से आगमनात्मक अनुमान है अर्थात अतीतकाल में प्रकृति की समरूपता के आधार पर भविष्य का अनुमान करना। वास्तव में आगमनात्मक सामान्यीकरण ही साहचर्य के नियमों की स्थापना का कारण है। ह्यूम का मानना है आगमनात्मक अनुमान बुद्धि और अनुभव से समर्थन करने योग्य नहीं है। ह्यूम के अनुसार बुद्धि और अनुभव के आधार पर बाह्य जगत में हमारा विश्वास दोषपूर्ण और भ्रामक है।[9] हालाँकि ह्यूम तथ्यात्मक ज्ञान को प्रायिक, अनिश्चित मानते हैं, इस कारण जगत से सम्बन्धित आनुभविक ज्ञान की प्रमाणिकता भी संशय ग्रस्त हो जाती है। असावधानी और किसी विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित न करना अथवा कोई अभिप्राय न होना ही संशय का एकमात्र उपचार है।[10] हालांकि ह्यूम जगत के ज्ञान सम्बन्धी प्रमाणीकरण के सम्बन्ध में तार्किक प्रमाणीकरण को नहीं मानते हैं फिर भी समकालीन दर्शन में उनके इस तरह के संशयवाद के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किये गए हैं। इस तरह ह्यूम का आनुभविक ज्ञान का प्रमाणीकरण सम्बन्धी मत संशयवाद के रूप में परिणत हो जाता है।

रसेल के अनुसार, ह्यूम का दर्शन अठारहवीं शताब्दी के तार्किक प्रमाणीकरण के दिवालियेपन का प्रतिनिधित्व करते है, इसलिए इसकी खोज करना आवश्यक है कि क्या अनुभववादी दर्शन के अलोक में ह्यूम की समस्या का कोई उत्तर दिया जा सकता है।

आनुभविक ज्ञान के प्रमाणीकरण के विरुद्ध आपत्ति और प्रतिउत्तर

कान्ट ह्यूम के इस विचार से सहमत हैं कि अनिवार्य सम्बन्ध का प्रत्यय वास्तव में कारण–कार्य के हमारे प्रत्यय का आवश्यक घटक है। वह ह्यूम की तरह यह भी मानते हैं कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष से न कारण–कार्य सम्बन्ध का और न ही अनिवार्यता के प्रत्यय को प्राप्त किया जा सकता है, दोनों हमारे मन की सहभागिता से सम्बन्धित हैं। परन्तु कान्ट ने ह्यूम के द्वारा प्रतिपादित कारणता की आनुभविक और मनोवैज्ञानिक प्रमाणीकरण सम्बन्धी व्याख्या का खण्डन किया है। कान्ट ने कारण–कार्य सम्बन्धों को एक बुद्धिविकल्प माना है। जिसे वह प्राग्नुभविक संप्रत्यय मानते है। वास्तव में कान्ट अनुभववाद और बुद्धिवाद का समन्वय करते हैं और इसीलिए कान्ट प्राग्नुभविक और आनुभविक ज्ञान की जगह संश्लेषणात्मक प्राग्नुभविक ज्ञान की सम्भावना की बात करते हैं। कान्ट का तर्क है की मनुष्य उस जगत का अनुभव करते हैं, जिसमें वह रहते हैं, पदार्थ, प्रकृति के नियम और कारणता वास्तव में अनिवार्य हैं। जगत सम्बन्धी उनके दावे प्राग्नुभविक आधार पर प्रमाणित हो सकते हैं।[11]

तार्किक भाववादियों ने ह्यूम के इस तरह के संशयवाद का खण्डन किया है। इसके लिए वे आनुभविक ज्ञान का समर्थन करने के लिए सत्यापन सिद्धांत का प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार समस्त आनुभविक ज्ञान, जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान भी सम्मिलित है, केवल प्रायिक होते हैं।[12] रसेल के अनुसार, आनुभविक कथनों की प्रायिकता कुछ प्रमाणों या इन्द्रिय–प्रदत्त आंकड़ों के सापेक्ष रूप में ही निर्धारित की जा सकती है। हालाँकि बाद में वह अपनी पुस्तक 'ह्यूमन नॉलेज' में प्रायिकता सम्बन्धी सिधान्त के विरुद्ध तर्क देते हैं। उनके अनुसार, 'यदि प्रायिकता को अपरिभाष्य माना जाये तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अप्रायिक घटनाएं घटित हो सकती हैं। इसलिए प्रायिकता पर आधारित आनुभविक कथन प्राकृतिक घटनाओं के बारे में कुछ नहीं कहती हैं। जो अप्रायिक होगा वो असंभव नहीं हो सकता क्योकि अप्रायिक घटनाएं घटित हो सकती हैं। हालाँकि रसेल के विरोध में ह्यूम की तरह यह कह जा सकता है कि भविष्य में अप्रायिकता की आशा करना उतना ही निरर्थक है जितना आनुभविक ज्ञान के आधार पर कारणता की स्थापना करना।

रसेल, ह्यूम द्वारा आनुभविक ज्ञान के आधार पर विश्वासों के तार्किक प्रमाणीकरण पर भी संशय करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ दार्शनिक ज्ञान को निश्चितता के अर्थ में लेते हैं। ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से संशयवाद मनोवैज्ञानिक निश्चितता की बात नहीं करते हैं बल्कि इसमें तार्किक निश्चितता की बात होती है। अर्थात जब भी हम किसी अनुभाविक ज्ञान से सम्बंधित कथन अथवा घटना अथवा संकल्पना के प्रमाणीकरण की बात करेंगे तो वहां मनोवैज्ञानिक निश्चितता न होकर तार्किक निश्चितता की बात होती है। ए. जे. एयर के अनुसार, यदि कोई जानने वाला किसी आनुभविक कथन को जानता है, तो वह उस कथन के बारे में निश्चित होने का अधिकार रखता है। विटगेन्स्टाइन के अनुसार, 'निश्चय शब्द पूर्ण विश्वास या धारणा संशय की अनुपस्थिति व्यक्त करते हैं और उनके द्वारा लोगों को विश्वास में लेने की कोशिश करते हैं। जो आत्मनिष्ठ निश्चितता है'।[13] उनके अनुसार, 'मैं कोई चीज जानता हूँ, यह इस पर निर्भर करता है कि प्रमाण मेरा समर्थन करता है अथवा व्याघाती है। अर्थात यह दावा करना कि 'अमुक आनुभविक कथन निश्चित है' यह संकेत करता है कि उनके लिए कोई प्रमाण नहीं है अर्थात किसी निश्चित कथन को स्वीकार करना प्रमाण पर निर्भर नहीं है, उस कथन की स्वीकृति भाषिक अभ्यासों में निहित है। वास्तव में विटगेन्स्टाइन और उनके कुछ अनुयायी संशयवाद से बचने के लिए ज्ञान को निश्चितता से भिन्न प्रकार की वर्गणा मानते हैं। वास्तव में पर्याप्त या निर्णायक साक्ष्य होने पर पूर्ण निश्चितता का दावा भी किया जा सकता है। एयर और ऑस्टिन जैसे दार्शनिक प्रत्येक परिस्थिति में प्रमाणिकता को ज्ञान के लिए आवश्यक नहीं मानते हैं।[14] एयर के अनुसार निजी अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त मूल कथनों के सन्दर्भ में प्रमाण का प्रश्न ही नहीं उठता है। एयर निरपेक्ष संशयवाद का निराकरण करते हैं। वास्तव में स्मृति के आधार पर सभी प्रत्यक्षों को भ्रामक कहना निरर्थक है, जैसा कि ह्यूम अपने तथ्यों के ज्ञान में कहता है। कोई भी प्रत्यक्ष अभ्रान्त तभी होगा जब उनके सापेक्ष रूप में कोई भ्रामक हो। यदि सभी प्रत्यक्षों को भ्रामक कहा जाये तो 'भ्रामक' शब्द अपने अर्थ से वंचित हो जायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि कुछ प्रत्यक्ष अभ्रांत भी होते हैं। एयर के इस तर्क को 'भाषिक प्राग्नुभविक' कहा जाता है। हालंकि यहाँ पर संशयवादियों द्वारा कहा जा सकता है कि सभी प्रत्यक्ष भ्रामक नहीं हैं लेकिन आखिर इसका प्रमाणीकरण कहां से दिया जा सकता है? एयर का उपयुक्त तर्क यहाँ पर भी लागू होता है। क्योंकि भ्रांत प्रत्यक्षों की सार्थकता के लिए अभ्रांत प्रत्यक्षों का होना आवश्यक है। अर्थात, भ्रामक प्रत्यक्षों और गलत स्मृतियों की सम्भावना अभ्रांत प्रत्यक्षों और सही स्मृतियों की सम्भावना को सिद्ध करते है।

निष्कर्ष

वास्तव में ह्यूम ने अपने अनुभववादी दर्शन में जिन प्रत्ययों का खण्डन कर रहे थे वो अनुभव से सम्बन्धित थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रमाणीकरण को तो मान लिया है लेकिन तार्किक प्रमाणीकरण की सम्भावना से इनकार करते हैं।[15] ह्यूम ने प्रत्ययों के सम्बन्ध जिसे आकारिक ज्ञान भी कहते हैं, को आनुभविक ज्ञान से स्वतन्त्र रखा।[16] लेकिन यदि आकारिक ज्ञान और तथ्यात्मक ज्ञान को अलग न मानकर दोनों को एक दूसरे से सम्बन्धित मान लिया जाये तो शायद हम किसी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँच सकें जहाँ पर संशयवाद का निराकरण कर विभिन्न संकल्पनाओं का तार्किक प्रमाणीकरण प्रस्तुत कर सकें। सार्वभौमिकता, अनिवार्यता और निश्चितता वास्तव में हमारे विश्वास में न होकर यह हमारे ज्ञान

का विषय है। यह सम्भव है कि हमारे ज्ञान की शुरुआत हमारे अनुभव से होती है लेकिन हमारे अनुभव की सामग्री पहले से जगत में विद्यमान है। हमें ज्ञान इसी विद्यमान जगत का होता है। हमारा आनुभविक ज्ञान इसी जगत से सम्बंधित है तो प्रमाणीकरण की सम्भावना भी इसी जगत में होगी।

संदर्भ सूची

1. Guyer Paul. (ed.), The Cambridge Companion to Kant's Critique of Pure Reason, Cambridge: Cambridge University Press, 2010, 51-52.
2. Swain M. Knowledge, Causalty and Justification, The Journal of Philosophy,1972:69(11):291-300.
3. McGinn C. 'A priori' and 'A Posteriory' Knowledge; Proceedings of Aristotelian Society, 1976, 195-208.
4. Ayer AJ. The Central Question of Philosophy; London: Weidenfeld and Nicolson, 1976.
5. Harries EE. Fundamental of Philosophy, Allen and Unwin: London, 1969, 284.
6. Lock J. An Essay Concerning Human Understanding, 1.2.3.4
7. Hume D. A Treatise of Human Nature, The project Gutenberg EBook, Produced by Choat, Col and Widger, David, 1739, 1, 3.
8. Sober E. Justified Belief and Hume's Problem of Induction (Core Questions in Philosophy); Boston: Pearson, 2013, 148-154.
9. Harries EE. Fundamental of Philosophy, Allen and Unwin: London, 1969, 253-262.
10. Hume D. A Treatise of Human Nature (The project Gutenberg EBook, Produced by Choat, Col and Widger, David), sec-1, part-4, chapter-2.
11. Walsh WH. (Revised by Robert R. Clewish), A Priori and A Posteriori Knowledge in Kant, Encyclopedia in Philosophy (internet), 2006.
12. Upadhyaya HS. Knowledge and Justification, Department of Special Assistance in Philosophy, University of Allahabad, Allahabad, 2002, 125-127.
13. Wittgenstein L. On Certainty (ed.) Anscombe, G.E.M. and Wright, G.H.Von, Harper & Row: NewYork, 1972, 194.
14. उपाध्याय, डॉ.हरिशंकर, ज्ञान मीमांसा के मूल प्रश्न, अनुशीलन प्रकाशन, राजीवनगर, इलाहबाद, सप्तम संस्करण, 2011, पृ. 182–192.
15. उपाध्याय, डॉ. हरिशंकर, पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, अनुशीलन प्रकाशन, राजीवनगर, इलाहबाद, तृतीय संस्करण, 2011, पृ. 177–244.
16. शर्मा, चन्द्रधर, पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, नवम संशोधित संस्करण, 2003, पृ. 133–156.
17. मिश्र, डॉ. हृदयनारायण, ज्ञान मीमांसा की समस्याएं, शेखर प्रकाशन, इलाहबाद, 1996, पृ. 58–61.
18. दयाकृष्ण, ज्ञानमीमांसा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 1972, पृ.146–165.